समयसार चौथी गाथा। पहले तो यह कहा कि अनंत बार इस जीव ने राग करना अर्थात इच्छा करना और इच्छा को भोगना, यह (बात) अनंत बार सुनी है, आत्मा के स्वभाव के अलावा... जिसका स्वरूप सहजात्म स्वरूप चैतन्यस्वरूप जिसका स्वभाव है ऐसे आत्मा को भूलकर पर की इच्छा करके और उसे भोगना... राग को करना एवं राग को भोगना - ऐसा तो अनंत बार किया है, अनंतबार सुना है, यह बात अनंतबार परिचय में आ गई, और अनुभव में भी यह आ गयी है। राग का अनुभव... परंतु आत्मा राग रहित है उसकी बात तो इसने सुनी नहीं, यह बात कहते हैं।

- ऐसा प्राप्त होने पर भी `निर्मल भेदज्ञानरूप प्रकाश से... यहाँ तक आया था। यह प्रभु आत्मा कैसा है ? किसप्रकार जानने में आये ? कैसा है यह बाद में कहेंगे। किसप्रकार जानने में आये यह प्रथम कहेंगे। आहाहा ! निर्मल भेदज्ञानप्रकाश, यह विकल्प जो सूक्ष्म में सूक्ष्मराग... विकल्प होता है, दया, दान, भक्ति व्रत, तप आदि

अथवा गुण-गुणी के भेद का जो राग होता है, वह भी विकल्प है उससे भिन्न निर्मल भेदज्ञान अर्थात राग से भिन्न है ऐसी धारणा तो इसने अनंतबार की है। शास्त्र पढ़े... उसमें भी यह बात आयी है। आहाहा ! परंतु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... यह राग जो पर तरफ की दशा जो वृत्ति पर तरफ की उठती है, उससे भिन्न करना, यह राग से भिन्न भगवान स्वरूप चैतन्य चमत्कारी सहजात्म स्वरूप, उसे निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... आहाहा ! उसमें पर का कोई प्रकाश कि पर का जानपना काम करता नहीं वहाँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश, राग से भिन्न और अंतरंग में चैतन्यस्वरूप, चैतन्य के प्रकाश से भरपूर प्रभु... सहजात्म स्वरूप अनंत आनंद स्वरूप (निजात्मा) उसे निर्मल भेदज्ञान रूपी प्रकाश से वह स्पष्ट भिन्न देखने में आता है। आहाहा ! जैसे यह जाननेवाला राग को, शरीर को, वाणी को जानता है, परंतु यह जाननेवाला राग से भिन्न निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखने में आता है प्रत्यक्ष भिन्न देखने में आता है। ओहोहो ! - ऐसा जो चैतन्यप्रकाश की मूर्ति प्रभु यह निर्मल भेदज्ञान... पर से लक्ष्य छोड़कर पर को भी मैं जाननेवाला हूँ यह भी लक्ष्य छोड़कर, आहाहा ! निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश... जिस विकल्प से पर का जानना है उसे भी छोड़ कर, उसे भी निर्मल भेदज्ञान के प्रकाश से स्पष्ट प्रत्यक्ष भिन्न देखने में आता है यह आनंद स्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में भिन्न दिखता है। आहाहाहाहा !

पर से पृथक, भिन्न, अंदर जो दया, दान के विकल्प उठते हैं, उससे भी भिन्न ऐसा जो निर्मल भेदज्ञान... जो धारणा ज्ञान किया है वह निर्मल भेदज्ञान नहीं है। आहाहा ! शास्त्र (बढ़कर) धारणा की, सुना कि आत्मा भिन्न है - यह निर्मल भेदज्ञान नहीं है। इसने राग मिश्रति ज्ञान को भेदज्ञान माना है, परन्तु इसे यह जिसने भेदज्ञान को जाना है (वह) राग मिश्रित (ज्ञान) को वास्तविक भेदज्ञान नहीं कहते। आहाहाहा ! निर्मल भेदज्ञानरूप, निर्मल भेदज्ञानरूप, प्रकाश से, उसके प्रकाश से। आहाहा ! परलक्षी ज्ञान से भी भिन्न किया, संक्षेप में बहुत समा दिया है। आत्मा कैसे जानने में आता है ? अनंतकाल से जाना नहीं, यह वस्तु अंदर चैतन्य, चमत्कार से भरा हुआ पदार्थ, परमानंद की गाँठ, परमानंद स्वभाव जिसका पूरा भरा है। आहाहा ! वस्तु है वह स्वयं दुःख रूप न हो सके, दुःख तो विकार है। इसलिये तो अंदर में अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप में आत्मा विराजमान है। प्रत्येक (आत्मा) आहाहा !

उसे भेदज्ञानरूपी निर्मलप्रकाश (ज्ञान) से, भिन्न करनेरूप भेदज्ञानरूपी निर्मलप्रकाश से... स्पष्ट प्रगट भिन्न देखने में आता है। आहाहाहा ! - ऐसा मात्र भिन्न आत्मा का एकत्वपना ही... - ऐसा (है) मात्र यही। आहाहा ! यह भिन्न आत्मा का एकत्वपना,

राग से भिन्न, पर को जाननेरूप लक्ष्य से भी भिन्न, आहाहा ! कहते हैं ऐसे भिन्न आत्मा का भिन्नपना (करना) यही मात्र एक शेष रह गया। आहाहाहा ! अन्य तो बहुत किया (बहुत) सुना, (बहुत) धारण किया... आहाहा ! मात्र इस भिन्न आत्मा का... आहाहा ! अकेला निर्मल आनंद प्रभु अंदर है, चैतन्यसूर्य, चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु अंदर है, भाई ! तुझे खबर नहीं। - ऐसा मात्र, इस भिन्न आत्मा का एकपना, यह भगवान आत्मा इसके पर से भिन्नपना, जो सदाप्रगटरूप अंदर में प्रकाशमान है - इसका यह अर्थ किया। तो अब है कैसा अंतर में प्रभु ? आहाहा ! जो सदा प्रगटरूप, व्यक्तरूप, जो अंतर में, चैतन्यस्वरूप अंतर में प्रगटरूप प्रकाशमान ज्योति है। आहाहा !

यह चैतन्य के प्रकाश की ज्योति है, अन्तरंग में यह चीज भरी है। आहाहा ! प्रगटरूप से अंदर में सदा, हमेश प्रगटरूप अंतर में, भगवान आत्मा का त्रिकाल स्वरूप सदा अंतर में, भगवान आत्मा का त्रिकाल स्वरूप सदा अंतर में प्रकाशमान है... प्रकाशमान चैतन्य प्रकाश ज्योति है। जैसे चन्द्रप्रकाश शीतलता का पिण्ड है इसीप्रकार यह आत्मा शीतल प्रकाश, शीतल अर्थात अकषाय; अकषाय स्वभाव का पिण्ड है, अब ऐसी बातें, अंतरंग में प्रकाश है, अंदर में प्रकाशमान कहते हैं, और भेदविज्ञान से प्रत्यक्ष जानने में आये - ऐसा है, इसप्रकार दो बातें कहीं है। अंदर अंतरंग में चैतन्य चकचकाट वस्तु है, तत्त्व है अस्ति है, तो यह चैतन्य के आनंद के चमत्कार से प्रकाशमान प्रभु अंदर में विराजता है। आहाहा ! वह भेदविज्ञान की निर्मल ज्योति से स्पष्ट जानने में आता है, परंतु इसने उसे किसी दिन जाना नहीं। आहाहा ! है ?

`तो भी कषायचक्र के साथ'... शुभ और अशुभ राग उसके साथ, एकरूप जैसा करने में आता होने से। आहाहा ! एक होता नहीं। चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, यह पुण्य-पाप, शुभाशुभ राग-कषाय, यह दया, दान व्रत भक्ति, पूजा आदि का राग, यह (सभी) राग कषाय है। आहाहा ! उसके साथ एकरूप जैसा करने में आता हुआ, एकरूप जैसा करने में आता हुआ होने से, कषाय चक्र... चक्र क्यों कहा ? पुण्य-पाप शुभ और अशुभ यह कषाय चक्र, वृत्ति उठती है एक के बाद एक शुभ-अशुभ शुभ-अशुभ, आहाहा ! ऐसे कषाय चक्र के साथ एकरूप जैसा करने में आता होने से माना जाता होने से यहाँ - ऐसा कहते हैं, तो प्रकाशमान ज्योति प्रगट भिन्न, परंतु राग के कषाय के कण के साथ एकरूप जैसा, एक रूप हुआ नहीं, एकरूप होता नहीं परंतु एकरूप जैसा करने में आया, विपरीत पुरुषार्थ से, आहाहाहा ! बापू यह अलौकिक बातें हैं।

अतीन्द्रिय आनंद का कंद प्रभु... सदा अंतर में प्रगट प्रकाशमान है और वह वस्तु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट देखने में आये - ऐसा है... आहाहा ! बहुत

कठिन काम, व्यक्तियों को अभ्यास नहीं। पूरी मूलवस्तु अंतर में क्या है ? - ऐसा होनेपर भी, अंतर में प्रकाशमान ज्योति और भेदविज्ञान से स्पष्ट प्रकाशमान, स्पष्टदेखने में आये - ऐसा होनेपर भी। आहाहा ! कषाय अर्थात शुभ-अशुभभाव उसके ऊपर दृष्टि (एकत्व) होने से, जाने कि मैं कषाय रागवाला हूँ - ऐसे कषायचक्र के भाव के साथ एकरूप जैसा करने में आया (क्या कहा) एकरूप जैसा, एकरूप हुआ नहीं परंतु उसकी मान्यता में (एकरूप माना)। वस्तु स्थिति यह है अंतरंग में प्रकाशमान (आत्मा) उसकी खबर न मिले। इसप्रकार भेदविज्ञान से स्पष्ट देखने में आता है - ऐसा उपाय नहीं करे। आहाहा !

इसलिये राग के चक्र के साथ... पुण्य और पाप शुभाशुभ भाव - ऐसे कषाय चक्र के साथ पुण्य और पाप शुभाशुभ भाव ऐसे कषाय चक्र के समूह के साथ, आहाहा ! एकरूप जैसा करने पर, क्यों नहीं जानने में आता ? भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसा है, अंदर में प्रकाशमान है, फिर भी क्यों जानने में नहीं आता क्योंकि कषाय के साथ एकरूप जैसा माना है उसने। आहाहा ! शुभ और अशुभराग वह कषाय है। कषाय अर्थात् कष अर्थात् संसार तथा आय अर्थात लाभ जिससे परिभ्रमण का लाभ मिले। आहाहा ! उसके साथ एकरूप एकत्वपना किया है - ऐसा नहीं। इसने एक जैसा माना है। आहाहाहा !

अन्दर में विराजमान चैतन्य ज्योति स्वरूप भगवान आत्मा निर्मल भेदज्ञान द्वारा रागादि से भिन्न देखा जाए - ऐसी वस्तु है; तो भी कषाय/राग के साथ एक जैसा किया (माना) गया है। जाने कि मैं ओर राग एक हूँ - ऐसा माना है। अरे ! (यह बात) कहीं सुनने नहीं मिलती। आहाहा ! यही गाथा तो चल रही है कि इसने यह बात सुनी नहीं। सुनी होती तो अन्दर प्रयोग किया होता। आहाहा !

एकरूप जैसा किया जाता होने से... आहाहा ! गजब भाषा है न ! द्रव्य चैतना ज्योति स्वरूप वस्तु है। वह तो चैतन्य के सहजात्मस्वरूप प्रकाश और आनन्द की मूर्ति है। इसे राग के साथ कभी एकत्व नहीं होता। भले शुभरागरूप विकल्प हो, (परन्तु) अन्तरंग में सदा प्रकाशमान ज्योति स्वरूप आत्मा और राग के बीच में साँध है, संधि है, बीच में दरार है... ये एक नहीं हुए आहाहा ! ऐसी बातें है।

यह किस जाति का धर्म... अरे बापू ! आहाहा ! वर को छोड़कर बारात इकट्ठी कर ली। वर जैसे मूल मुख्य है। इसीप्रकार आत्मा मुख्य चीज कितनी और कैसी है, उसके ज्ञान और भान बिना इसे क्रिया-काण्ड में लगा दिया है। आहाहा ! यह दूल्हा बिना की बारात है। आहाहा ! (श्रोता :- यह बारात कहलाये ?) लोग कहे वैसे तो आदमियों की भीड़ कहलाये, बारात तो जब कहलाये वर हो साथ में, दूल्हा

दूल्हा कहते हैं हिन्दी में, दूल्हा साथ में हो (वर) तो उसे बारात कहते है। इसीप्रकार राग से भिन्न चैतन्य का ज्ञान हो तब फिर राग आये अवश्य, तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा ! अब - ऐसा सूक्ष्म उपदेश... आहाहा !

- ऐसा होने से `अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है'। वस्तु तो वस्तु है, परंतु राग और कषाय तथा पुण्य के साथ एकत्व किया जाने से आहाहा ! अत्यंत तिरोभाव (अर्थात) इस जीव को ढक दिया है। जिसने राग और कषाय के साथ, एकपना किया (माना) है उसे यह (ज्ञायक) ढक गया है। वस्तु तो वस्तु है अंदर, ज्ञायक चैतन्य ज्योति, परंतु राग और कषाय के साथ एकत्वपना करने से उसे यह ज्ञायकपना लक्ष्य में आता नहीं, उसे ढक गया है। समझ में आया ? ज्ञायकपनेरूप जो वस्तु है वह ढकती नहीं इसीप्रकार प्रगट नहीं होती, वह तो है सो है। परंतु अज्ञानी को यह स्वरूप कैसा है उसका पता नहीं, इसलिये दया, दानरूप विकल्प की वृत्ति के साथ में एकपना मानकर रुक गया है, उसे यह ज्ञायक भाव ढक गया है। उसे यह ज्ञायक भाव दृष्टि में आता नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है।

फिर अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ। आहाहाहा ! एकरूप जैसा करने में आता होने से यह कषाय का भाव है, शुभ-अशुभ उसके साथ... मूल में तो यह कहना है कि पर्याय बुद्धि होने से... आहाहा ! द्रव्य स्वभाव उसे अत्यंत ढक गया है। आहाहा ! समझ में आया ? पुस्तक है न सामने किसका अर्थ चलता है यह ? आहाहा ! सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा ! अभी तो लोग संप्रदाय का नाम सुनकर भड़कते हैं। आहाहा ! यह तो दिगम्बर सम्प्रदाय है, यह तो सनातन दिगम्बर है, दूसरा यह सभी.... अरे भाई सुनो न बापू ! इसे देखकर भड़कते है भागते है, अरेरे इसमें - ऐसा क्या ?

अंदर विकल्प के साथ एक जैसा करने (मानने) में आया होने से... अर्थात स्वभाव के साथ विभाव एकरूप है - ऐसा मानने में आया होने से... आहाहा ! - ऐसा ज्ञायक भाव भगवान सहजात्म स्वरूप, चैतन्य के प्रकाश का आनंद का पूर यह उसकी दृष्टि में ढ़क गया है। प्रगट प्रकाशमान है यह तो कहा न ? आहाहाहा ! मार्ग सूक्ष्म प्रभु। तुम महान और मार्ग सूक्ष्म। आहाहा ! कहते हैं तुम्हारी महानता की क्या बात करना, तुम राग से भिन्न करो तब भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसी तुम्हारी महानता है। कहीं राग से गुरु से (एवं) केवली (परमात्मा) से जानने में आये, शास्त्रों के ज्ञान से जानने में आये - ऐसा नहीं प्रभु ! आहाहाहा ! तुम्हारी महानता बड़ी है प्रभु ! आहाहा ! कि तुम स्वयं के ऊपर लक्ष्य करके राग से भिन्न करे तो तुम जानने में आओ। तुम्हारी महानता को दृष्टि में लेकर और राग से भिन्न करे तब तुम जानने में आओ - ऐसे है आहाहा ! ऐसी वस्तु है।

`तिरोभूत हुआ है, ढक रहा है आहा ! वह स्वयं में अनात्मज्ञपना होने से'... स्वयं ने राग (के साथ) एकता मानी है, इसलिये वह अनात्मज्ञपना है। आहाहा ! अनात्मज्ञ, अनात्मज्ञ जो आत्मा नहीं उसे अपना मान कर पकड़ रखा है। अहाहाहा ! अपने में अनात्मज्ञ, राग है वह अनात्म है। आहाहा ! उसके साथ एकपना मान कर अपने में अनात्मज्ञपना होने से, `स्वयं आत्मा को जाननेवाला नहीं होने से,' आहाहा ! पर्याय में जो राग का अंश आया चाहे शुभ आचरण का हो, उसका आत्मा के साथ एकपना माना इसलिये उसे... आहाहा ! है ? आहाहा ! अनात्मज्ञपना होने से जानने में नहीं आता - ऐसा कहते हैं। राग की एकता में अनात्मज्ञपना होने से, **अंदर आत्मा प्रकाशमान ज्योति विद्यमान होने पर भी उसने उसे जाना नहीं ? आहाहा** ! स्वयं आत्मा को नहीं जानता होने से, एक बात, दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति, सेवा नहीं की होने से, तब फिर क्या (हो) भला ? ***वैसे तो अनंत बार तीर्थंकरों के समवसरण में गया, अनंत बार सच्चे संतो (गुरुओं) का शिष्य हुआ, उनका परिचय किया है, परंतु यहाँ कहते हैं कि आत्मा को जाननेवालों की सेवा नहीं की - ऐसा कहा है न ?*** तब आत्मा जो जाननेवाला है, आत्मा किसे कहना ? कि रागरहित जो आत्मा है - ऐसा जिसने जाना है, उसे आत्मा कहना, इसप्रकार आत्मा की तुमने सेवा की नहीं। उन आत्माओं ने तो आत्मा बताया है। आहाहाहा !

- ऐसा कहना है कि अनंत बार गुरु मिले, अनंत बार तीर्थंकर मिले समोशरण में गया, फिर भी अज्ञानी रहा, इसका मतलब ? कि जाननेवाले की आज्ञा क्या है ? जाननेवाले आत्मा की सेवा क्या है ? कि इसे जाननेवाले आत्माने - ऐसा कहा कि तुम्हारा आत्मा राग से भिन्न है - ऐसा देखो, भेदज्ञान से तुम्हें मिलेगा। ऐसी आज्ञा उनकी थी यह आज्ञा उसने मानी नहीं। इसलिये इसने गुरु की सेवा की नहीं - ऐसा कहा जाता है। ***गुरु कहीं शरीर नहीं कि उसकी सेवा करना, गुरु वाणी भी नहीं कि उस वाणी की सेवा करना। आहाहाहा ! गुरु तो वीतरागस्वरूप मूर्ति प्रभु है, उसकी सेवा नहीं की अर्थात कि उन्होंने जो कहा कि ? तुम्हारा स्वरूप वीतराग है और हमारे कहने का तात्पर्य भी वीतरागता प्रगट करना है, यह वीतराग (की) प्रगटता तुम्हारे वीतरागस्वरूप के आश्रय से होगी- ऐसा उन्होंने कहा - यह माना नहीं। समझ में आया ?***

प्रारंभ की गाथायें सभी सूक्ष्म है। बारह गाथाओं में तो मूल भूमिका है, फिर तेरह से उसी का विस्तार होता है। आहाहा ! अभी तो उसे क्या समझना क्या बात कहते हैं, यह समझना मुश्किल है, इसका मतबल यह हुआ कि आत्मा को जाननेवालों की सेवा करें तो कल्याण हो। परंतु सेवा की परिभाषा क्या ? गुरु की

सेवा अर्थात क्या ? गुरु अर्थात क्या ? वीतरागस्वरूपी प्रभु, वीतरागस्वरूपी गुरु, यह वीतरागस्वरूप को बतानेवाले ऐसे वीतरागस्वरूप को जाना नहीं अर्थात वीतराग की सेवा की नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है।

(आत्मा को) जाननेवालों की सेवा नहीं की अर्थात ? जाननेवाले कौन ? जाननेवाला शरीर है ? जाननेवाला राग है ? आहाहा ! उसका जो ज्ञान और ज्ञातापना वही गुरु है; उनकी सेवा नहीं की, अर्थात उन्होंने ज्ञान स्वरूपी आत्मा को बताया - ऐसा उसने - ऐसा नहीं माना, किसी न किसी तरह राग और पर से लाभ होता है, ऐसी मान्यता में उसने गुरु की सेवा (नहीं की) अर्थात गुरु ने कहा वह माना नहीं। आहाहा ! कितना भर दिया है ? एक तो स्वयं अनात्मज्ञ है अर्थात राग को अपना मानकर, जो नहीं वह मानकर बैठा है इसलिये अनात्मज्ञ है और जिसने राग से भिन्न जाना है उसे यह राग से भिन्न करने को कहते हैं। वह उनकी आज्ञा है। आहाहा ! ***गुरु और देव की आज्ञा का निचोड़ वीतरागता है। वीतरागता उन्होंने बताई उसने वीतरागता प्रगट नहीं की, राग का आश्रय लेने से, जो वीतरागस्वरूप आत्मा उसका ज्ञान नहीं किया, अर्थात उसकी सेवा नहीं की- ऐसा कहा जाता है।*** आहाहाहा !

दूसरे आत्मा को जाननेवालों की संगति (अर्थात) सेवा नहीं करने से आहाहाहा ! है न ! '**परेषामात्मज्ञामनुपासनाच**' आहाहा ! सेवा नहीं कि - ऐसा है न ? उपासना अर्थात सेवा नहीं की सेवा का अर्थ स-ऐव उन्होंने जो कहा कि तुम्हारा स्वरूप वीतराग है और वह राग से भिन्न करके जानने में आये - ऐसा है। - ऐसा कहा कि ऐसी आज्ञा मानी नहीं। इसप्रकार इसने सेवा की नहीं - ऐसा कहा जाता है। ***सेवा अर्थात कहीं पकवान खिलाना तथा उनके पैर दबाना वह गुरु की सेवा है ? परंतु यह तो जड़ है माटी है, यह शरीर तो जड़ है। (क्या) इसको गुरु कहें ? वाणी है वह गुरु कहलाये ?*** आहाहा !

इसलिये इस कारण... एक तो स्वयं राग के सूक्ष्म विकल्पों को वे जाने, आत्मा के हों - ऐसा मानकर अनात्मज्ञरूप रहा और आत्मज्ञानियों के द्वारा कही हुये भावों को जाना नहीं। आहाहाहा ! शास्त्र बारह अंग (रूप) है, परंतु बारह अंग क्या कहते हैं, गुरु और केवली बारह अंगों में क्या कहते हैं ? कि वीतरागता। वीतरागता हो कैसे ? कि स्व के आश्रय से। ऐसी गुरु की आज्ञा थी उस प्रकार इसने नहीं किया। समझ में आया ? पहले कभी सुनने में नहीं आया। आहाहाहा ! इस कारण राग को एकरूप मानने से आत्मज्ञान शून्य रहा, आत्मज्ञान की आत्मज्ञानी करने की जो आज्ञा उसका तो सेवन किया नहीं।

`पहले कभी सुनने में नहीं आया' कभी सुनने में नहीं आया कि राग से भिन्न वस्तु है, वह वीतरागस्वरूप है और भिन्न करे तो वीतरागता प्रगट होगी, यह बात उसने कभी सुनी नहीं, आहाहाहा ! सुनने का फल आया नहीं, आहाहा ! इसलिये सुना नहीं। समझ में आया ? यह प्रभु अंदर राग के अंश से भी भिन्न प्रभु... वस्तु हो वह विकारी क्यों हो ? वस्तु में अल्पज्ञपना होजाये ऐसी वस्तु क्यों हो ? आहाहा ! वह तो पर्याय रूके और पर्याय में अल्पज्ञपना हों, वस्तु तो पूर्ण है। आहाहा !

चैतन्य चमत्काररूप समाधि से भरा हुआ भगवान, शान्त रस से भरा प्रभु, उसका ज्ञान नहीं किया, राग की एकता बुद्धि के कारण, है तो राग से भिन्न, तुम मानों तो भी भिन्न, नहीं मानों तो भी भिन्न। आहाहा ! और गुरु की आज्ञा अर्थात यह, गुरु स्वयं राग की आज्ञा करें नहीं, कारण कि राग की आज्ञा यह तो विकार की (आज्ञा) है। आहाहा ! यह प्रभु अंदर तो तुम्हारा स्वरूप वीतराग है, तुम सच्चिदानंद प्रभु हो। आहाहा ! चैतन्य की चमत्कारी ज्योति से भरपूर वीतराग मूर्ति तुम्हारा स्वरूप और उसके आश्रय से ही वीतरागता अर्थात धर्म होता है यह बात इसने ग्रहण की नहीं। इसलिये पूर्व में कभी सुना नहीं। आहाहाहा !

`नहीं पहले कभी सुनने में आया' एक तरफ कहे कि समोवशरण में अनंत बार गया, केवली के सामने भी कोरा रह गया। सर्वज्ञ परमात्मा विराजते हैं, महाविदेहक्षेत्र में तो सदा रहते हैं, मनुष्यक्षेत्र है हों, मनुष्य क्षेत्र (ढ़ाईद्वीप) में है, वहाँ अनंतबार जन्मा है, पुद्गल परावर्तन के अनंतो भव किये, सुनने अनंतबार गया है। तुमने सुना नहीं। सुनने का फल जो राग से भिन्न करना चाहिए वह हुआ नहीं, इसलिये तुमने सुना नहीं। आहाहाहा !

`पहले कभी परिचय में आया नहीं', सुनने में आया नहीं तो परिचय में कहाँ से आये ? राग बिना का हमारा प्रभु - ऐसा परिचय कब करे यह। आहाहाहा ! निर्विकल्प वस्तु है प्रभु, राग बिना की (आत्मवस्तु), उसका इसने परिचय किया नहीं क्योंकि सुनने में आया- ऐसा इसने सुना नहीं। - ऐसा इसने किया नहीं तो फिर परिचय में आया नहीं। आहाहा ! ना ही पहले कभी अनुभव में आया, राग से भिन्न प्रभु, क्योंकि राग है यह तो पुण्य (पाप) तत्त्व है, वह कहीं आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा ! नौ तत्त्व हैं। इसलिये अजीव शरीर वाणी मिट्टी यह तो अजीव है पापरूप हिंसा, चोरी, झूठ के भाव यह पाप तत्त्व है, दया, दान, भक्ति आदि के परिणाम पुण्य तत्त्व हैं। प्रभु तो उससे भिन्न ज्ञायक तत्त्व है। आहाहाहा ! ***नौ तत्त्वों को जाने तो उसमें आत्मा ज्ञायकतत्त्व है - ऐसा आता है। यह आत्मा राग तत्त्व है - ऐसा नहीं आता वहाँ।*** आहाहाहा !

`इस कारण इसे अनुभव में आया नहीं, इसलिये भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं'। आहाहा राग से विकल्प से शुभभावरूप कषाय के अंश से भी भिन्न- ऐसा आत्मा इसे सुनने में आया नहीं, इसलिये सुलभ नहीं। यह बात कही सुलभ नहीं, यह सुनना सुलभ नहीं, परिचय में आना सुलभ नहीं तथा अनुभव में आना सुलभ नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! सुनना सुलभ नहीं। (श्रोता :- उपदेश भी कहीं कहीं है, ११ वीं गाथा में आता है) बाहर के आश्रय और पर की अपेक्षा से आत्मा को लाभ हो तब वह चीज जिससे लाभ माना वह वस्तु अपनी मानी। आहाहाहा ! जिससे लाभ हो वह वस्तु ही अपनी मानी राग से लाभ हो अथवा निमित्त से लाभ हो आहाहा ! तब निमित्त रूप परवस्तु को अपना माना, परंतु स्वयं ही स्वभाव है और उसी से लाभ हो स्वभाव से स्वभाव का लाभ होता है। आहाहा !

शुद्धोपयोग से आत्मा को लाभ होगा। आहाहा ! ऐसी बात इसने (सुनी नहीं) भिन्न आत्मा का एकत्वपना सुलभ नहीं है यह राग से नहीं (अपितु) शुद्धोपयोग से प्राप्त होगा - ऐसा इसका स्वरूप है - ऐसा भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं। यह बात कहीं सुलभ नहीं बापू ! सुनना भी सुलभ नहीं, परिचय सुलभ नहीं, अनुभव सुलभ नहीं, आहाहा ! इस इस कारण कहा है न ? राग से एकत्व करके बैठा, स्वयं अनात्मज्ञ है, आत्मज्ञानी की आज्ञा मानी नहीं, भेदज्ञान करके जानने में आये, ऐसी प्रकाशमान ज्योति है - ऐसा लक्ष्य में लिया नहीं, इसलिये यह बात सुलभ नहीं। आहाहाहा ! कहां जयंती भाई ? तुम रविवार को आये तो अच्छी बात आयी। आहा !

ओहोहो ! क्या गजब बात की है न ? कहते हैं प्रभु तुमने हमको सुना, यह भी विकल्प है और इससे लाभ माने तो तुमने आत्मा को कषाय जैसा किया। आहाहाहा ! तीनलोक के नाथ - ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर संत - ऐसा कहते हैं... हमने कहा वह तुमने सुना नहीं। आहाहा ! हमारी सेवा तुमने की नहीं, अर्थात कि हमारे कहने का आशय राग से भिन्न करके आत्मा को जानना है, भेदज्ञान से जानने में आये - ऐसा आत्मा है - ऐसा जानों यह हम कहना चाहते हैं। आहाहा ! इस की जगह किसी भी तरह - `पर की अपेक्षा से, राग से निमित्त से भेद का ज्ञान करने से अभेद हो, व्यवहार से परमार्थ जानने आता है कि नहीं ? - ऐसा पाठ (शास्त्रो में) है कि नहीं ? वह तो - ऐसा कहते हैं कि उसके द्वारा (व्यवहार द्वारा) वह जानने में आता है।' परंतु वह जाननेवाला भेद का अनुसरण करता नहीं। कहनेवाला और जाननेवाला भेदों का अनुसरण करता नहीं। उसे जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं, `ज्ञान वह आत्मा' ल्यो ! इतना भेद किये बिन किस तरह समझायें ? आहाहा !

अंदर में चैतन्य का प्रकाश है वह आत्मा, लो यह भी इतना भेद करके समझाया।

परंतु समझाया क्या ? आत्मा वहाँ दृष्टि करे तो भेद से समझाया - ऐसा निमित्त अपेक्षा कहा जाता है, फिर भी निमित्त का तथा भेद का अनुसरण करने लायक नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बातें हैं। अरे ! चौराशी लाख का जन्ममरण कर करके अनंतकाल से (भ्रमा है) अनादि का है, यह कोई नया है ? तब कहां रहा ? इन भवों में रहा, चिंटी, कौआ, कुत्ता, समूर्च्छन जीव एवं नारकी पशु, ढोर में आहा ! मनुष्य हुआ तथा देव हुआ यह तो अल्पभव, वह बहुत भव। आहाहा ! देवों से भी निगोद के भव बहुत किये न ? आहाहा !

एक भी बात जो इसे यथार्थरूप में ख्याल में आ जाये तो दूसरे सभी भावों की सुलभता होजाये... कि अनादि से यह हूँ। जो है उसकी शुरूआत नहीं होती है, - उसकी शुरूआत क्या ? और है उसकी उत्पत्ती कैसी ? है वह रहा कहाँ ? परिभ्रमण में, प्रत्यक्ष दिखता है कि मनुष्यपना तुम्हें मिला है तो भव मिला तुम्हें। आहाहा ! और उस भव के कारणों का तुमने सेवन किया है ? तो यह भव आनेवाले भवों का कारण, यह भव अगले भव का कारण, उस प्रकार सभी, सेवन करके भव किये। आहाहा ! अंतर बात की - ऐसा कहा है न ! अंदर में कहा, तुम प्रकाशमान ज्योति हो, सदा अंतर में प्रगट प्रकाशमान ज्योति है, देखो ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। है न ?

सदा... त्रिकाल, प्रगटरूप... प्रत्यक्ष होसकता है अंतरंग में अन्तर में, ऐसे बाह्य में नहीं प्रकाशमान ज्योति पूर्ण है। आहाहा ! - ऐसा तो प्रभु है उसे भेदज्ञान की ज्योति द्वारा देखा और जाना नहीं। आहाहा ! यह बाह्य को जाननेवाला मैं, राग को करनेवाला मैं, परंतु बाहर का जाननेवाला नहीं परंतु जाननेवाले का जाननेवाला मैं आहा ! जिसकी भूमिका में जानना होता है उसको जाना वह मैं, पर को जाना वह (मैं) नहीं। आहाहा ! इसप्रकार पर से भिन्न आत्मा का पाना सुलभ नहीं। आहाहा ! दुर्लभ है भाई ! आया न ? **`एयतस्सुवलंभो णवरि न सुलहो विहत्तस्स`** पर से विभक्त... भिन्न, स्व से एकत्व यह सुलभ नहीं। आहाहा ! अरे भाई यह बात दुर्लभ है। इसलिये भिन्न आत्मा का एकपना सुलभ नहीं। आहाहा ! फिर सुलभ नहीं इसका अर्थ किया कि यह तो दुर्लभ है। भावार्थ इसप्रकार कि सुलभ नहीं अर्थात दुर्लभ है। आहाहा !

भावार्थ :- इस लोक में... प्रथम तो यह लोक सिद्ध किया, लोक जगत है। आहाहा ! `उसमें सभी जीवों ने संसाररूपी चक्र ऊपर चढ़कर` पुण्य-पाप के रागरूप चक्र में चढ़े... यहाँ यह संसाररूपी चक्र, कषाय भाव वह संसार है और पुण्य तथा पाप, पुण्य और पाप, शुभ एवं अशुभ शुभ और अशुभ, ऐसे चक्र में पढ़कर `पंचपरावर्तरूप

परिभ्रमण किया जगत के जितने संयोगी पदार्थ है उनके संयोग में आगया है, जगत का जितना क्षेत्र है, प्रत्येक क्षेत्र में जन्म-मरण कर चुका है, काल जितना है प्रत्येक काल में जन्म-मरण (रूप) परावर्तन कर चुका, भव जितना है उतने भव भी कर चुका है और भाव जितने है पुण्य-पाप के भाव अनंतबार कर चुका। आहाहाहा !

`वहाँ उसको मोहकर्म का उदयरूप पिशाच घानी की ज्वार में जोड़ता है' मोह कर्म का उदय अर्थात, मिथ्यात्वभाव, विपरीत मान्यता, आहाहा ! यह रागांश हमारा है -ऐसी मान्यता (वह) मिथ्यात्वरूपी पिशाच अर्थात् भूत घानी की ज्वार में फसाता है। आहाहा ! पशुओं को ज्वार में बांधते हैं न। आहाहा गले के ऊपर (गाड़ी तथा धानी) की ज्वार नहीं रखते है ? गले के ऊपर यहाँ कंधे पर ज्वार रखते है। ज्वारी ऊंची करें तो वह मुंह डालता है इसप्रकार यहाँ भी मिथ्यात्वरूपी पिशाच, विपरीत श्रद्धा - ऐसा भूत ज्वार में (कर्त्ता-भोक्तापने में) जोड़ता है। आहाहाहाहा ! संसारिक मजदूरी के काम में जुड़ गया यह, मिथ्यात्वरूपी भूत की भांति, यह करना तथा यह करना एवं यह कहना। आहाहा ! एवं मिथ्यात्वरूपी पिशाच ने जैसे ज्वारा ऊंचा किया तथा बैल उसमें मुंह फसांता है, इसीप्रकार यह फस जाता है। अनादि से। आहाहा ! पहले बैल जब छोटा होता है तब ज्वारा में लगाना हो तो बहुत सिखाना पड़ता है। जबरजस्ती लगाना पड़ता है, बैलगाड़ी के ज्वारों में नये बछड़ें को खींचना पड़े बड़ी मुश्किल से नीचे आता है, और फिर बाद में आदत हो जाती है, फिर लकड़ी का ज्वारा ऊंचा करे तब वह सिर नीचे डाल देता है। इसीप्रकार छोटे बच्चे को व्यापार धंधा में जबरजस्ती लगाना पड़ता है अन्यथा भाग जाये, (गादीपर) बैठे फिर तैयार होजाता है-अर्थात जुड़ गया अंदर फस गया। आहाहा !

जगत को सुधार दें, लोक को सुधारें, ऐसे काम में फिर ज्वारा में लग गया मिथ्यात्व के कारण। आहाहा ! जो कर सकता नहीं, किसे सुधारे ? किसे बिगाड़े ? आहाहा ! परंतु मिथ्यात्व श्रद्धारूपी भूत ने इसे उल्टे काम में जोड़ दिया, अरे, शुभ में जोड़ दिया और मिथ्यात्व के (कारण) यह करना पड़े यह करना चाहिए। आहाहा !

`इसलिये वह विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होता है' अर्थात क्या कहते हैं ? कि विपरीतश्रद्धा जो राग को अपना माना - ऐसा भूतने इसे ज्वारा में फंसा दिया है (कार्य में) क्योकि मिथ्यात्वमें से पर की तृष्णा उत्पन्न हुयी, सम्यग्दर्शन में अंदर की भावना आये, और मिथ्यात्व में भावना पर की आये। इसका करूं, इसका करूं, बच्चों का करूं, पत्नी का करूं। आहाहा ! तृष्णारूपी दाह, यह अनंतानुबंधी कषाय की रागरूपी तृष्णा मिथ्यात्वमें से निकलती, आहाहा ! दाह से पीड़ित होता है जलन होती अंदर, तो भी उसमें काम किया करे और ख्याल नहीं कि यह क्या

है ? विषय तृष्णा रूपी दाह से पीड़ित है। आहाहा ! और उस दाह का इलाज इन्द्रियों के रूपादिक विषयों को जानकर। आहाहा ! इच्छा हो उसका उपाय क्या ? कि इसे भोग लूँ, इसे खालूँ इसे पी लूँ, और देख लूँ, यह उसका उपाय मानता है। आहाहाहा ! जलन का इलाज इन्द्रियों के रूपादिक रूप को देख लूँ तो मेरी इच्छा पूरी होजाय। इसप्रकार खूब खा लें, खूब भोग लें, तो फिर शांति होगी, आहाहा ! इसप्रकार कि भोगों में लग गया है। आहा ! तृष्णा में लग गया... स्वयं का संतोष आनंद स्वभाव उसमें न आकर राग के अंश में एकता करने से मिथ्यात्वमें से तृष्णा उत्पन्न होती है, उस तृष्णा ने पांच इन्द्रियों के विषय में लगा दिया, अतीन्द्रिय भगवान रह गया। आहाहा !

है न इन्द्रियों के रूपादिक विषयों को जानकर, उन पर दौड़ता है, उन पर दौड़ता है। आहाहाहा ! सभी इन्द्रियों के विषयों को देखता है, स्त्रियों का शरीर, अपना शरीर, लड्डू, दाल-भात तथा उसमें ऊंची ऊंची चीजें, मैशूरपाक को देखकर वहाँ ललचा जाता है, जुड़ जाता है, परंतु यह सभी धूल है। भगवान आनंद का नाथ अंदर है वहाँ न जाकर यह बाहर की तृष्णा में दौड़ता है। दौड़ता है एक के बाद एक-यह लूँ, यह लूँ, यह लूँ। एक राजा की कहानी आती है कि भोजन करते समय अच्छा-अच्छा रवाने को हो, उसी समय दासियों को नचवाये, उसी समय बाग-बगीचे में बैठे- ऐसा माने कि पांचों इन्द्रियों को एक साथ भोगूं- ऐसा। अपने हीराभाई कहते थे, हीराचन्द्रमास्टर। आता है न कहानियों में आता है खाने-पीने में मैसूर आदि खाये। फूल आदि के वृक्षों के पास बैठे, वह सूंघे, खाये, दासियों में जो सुन्दर स्त्रियाँ हों उसको नचाये अर्थात सभी एक साथ पांचों इन्द्रियों के विषय, आहाहा ! यह पर की तरफ झपट्टे मारे। अंतर तरफ झुकने की बात को सुनता नहीं। आहाहा ! जानकर पर (तरफ) दौड़ता है ! फिर विशेष... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)